डॉ0 रवींद्र कुमार जैन की 'तप्त लहर' : विघटित जीवन–मूल्यों की दास्ताँ

डॉ. आर.पी. वर्मा,
एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

शब्द तो कुशा हैं

जब

सजते हैं पूजा बन जाते हैं

मानव का पीछा करते हैं

तो मन

बाण बन जाते हैं।

कवि की आँखों में झिलमिलाती आशाओं को

शब्द

सपनों में बादल देते हैं।

शब्द तो कुशा हैं

शब्द तो

कुकुरमत्ते हैं जब छाते हैं

बोलते नहीं

काम कर जाते हैं

शब्द तो कुशा हैं

कभी मकड़ी के जाले बन

कवि को ही उलझाते हैं

शब्द तो कुशा हैं

जी हाँ, कवि के काव्य–संग्रह 'तप्त लहर' का शब्द–शब्द कुशा के समान है। मानव एक ऐसा प्राणी है, जो स्वयं कर्ता भी होता है और भोगी भी। वह नियम बनाता भी स्वयं है और तोड़ना भी स्वयं है। मानव की जिज्ञासु–प्रवृत्ति निरंतर खोज में लगी रहती है और इसी खोज का परिणाम शब्दों में ढलता है। आज का कवि एक नए मानव के रूप में प्रतिष्ठित हो रहा है। वह अपने संघर्षों में तपकर फौलाद बनता है अथवा टूटकर बिखर जाता है। निरर्थक परंपराओं का विरोध करते, जीवन में बहुत–कुछ सहते–भोगते कवि का अंतर्मन जब विद्रोह पर उतर आता है तो वह उठता है–

चर से मस्तक दलूँगा।

तुम मुझे रोको न लहरों,

मैं सदा बढ़ता रहूँगा,

रूकना मरण से भी बुरा है,

मैं सदा लड़ता रहूँगा।

जिन्हें हम दाता मानते हैं अर्थात् ऐसा दाता, जो केवल देता है, जो किसी से कामना नहीं करता, जब वही अपने लिए जीने लग जाए तो वह मजबूरी में जनता स्वीकार किया जाता है। कवि कहता है कि इस सृष्टि के प्रत्येक कण में सौन्दर्य और जीवन है, बस उसे देखने के लिए दृष्टि चाहिए। अपनी एक कविता 'चर्मन नहीं मर्म' में कवि जग के ऐसे लोगों की वास्तविकता सामने

लाना चाहता है, जो ऊपर से कुछ तथा अंदर से कुछ और दिखाई देते हैं। जो पहाड़ अपनी कठोरता और जड़ता के लिए बदनाम हैं, उनके सीने में चाँदी के झरने बसते हैं और काँटों की छाया में फूल सुरक्षित रहते हैं। सौंदर्य का प्रतीक कमल कीचड़ में उपजता है तथा कोयले की खान में हीरा उपजता है। इस प्रकार जिसकी आत्मा में गहराई हो, वहॉ तक इस संसार की दृष्टि नहीं पहुँच पाती। कवि की इस रचना में विभिन्न विघटित जीवन–मूल्य दृष्टिगोचर होते हैं। भले जी 'मूल्य' शब्द अर्थशास्त्र से सम्बन्ध रखता हो, किन्तु यह शब्द मानव–जीवन में शाश्वत रूप से जड़ा हुआ है। इस शब्द को किसी एक निश्चिय परिधि में न बाँधकर व्यापक अर्थ में स्वीकार किया गया है। मनुष्यों के द्वारा मूल्यों का निर्माण होता है, उसको भोगनेवाला भी वही है और खोजनेवाला भी वही है। मानव जाति के लिए मूल्यों के महत्व की जानकारी आवश्यक है। मानव और मूल्य जीवन के दो पहलू हैं, किन्तु उनका अटूट सम्बन्ध है। जैसे–जैसे समय और समाज बदलता है, मूल्य में भी परिवर्तन होता है, जीवन–मूल्यों को लेकर पश्चिम की अपनी एक दृष्टि रही है। पाइथागोरस ने पहली बताया कि–मनुष्य ही सभी पदार्थों का मापदंड है (Man is the measure of all things)। इसके पश्चात् प्लेटो–जैसे विचारक ने मूल्य को एक श्रेष्ठ सिद्धांत माना। अरस्तु ने मूल्य को वस्तुनिष्ठ मानते हुए नैतिकता पर बल दिया। इनके पश्चात् कई सौंदर्य–चिंतकों ने अपने–अपने ढंग से मूल्य का विश्लेषण किया। जीवन–मूल्यों के प्रति भारतीय दृष्टि सदैव व्यापक रही है। प्राचीनकाल में जीवन–मूल्यों के लिए नैतिकता को महत्व दिया जाता है। ब्राहमण–युग में जीवन–मूल्यों में बदलाव आया और धार्मिक जीवन–मूल्यों को प्रधानता दी गई। धीरे–धीरे मूल्य परिवर्तित हुए और आध्यात्मिकता का प्रवेश हुआ। आज का युग आधुनिक युग है। समाज के परिवर्तित जीवन मूल्यों और मानवीय मूल्यों को हम स्पष्टतः देख सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं। वास्तव में जीवन–मूल्य और मानव–मूल्य कोई अलग–अलग मान्यताएँ नहीं, जब मूल्यों को जीवन के साथ सम्बद्ध किया जाता है तो ही मूल्य मानव के मार्ग–दर्शक बनते हैं, जिसके प्रकाश सभ्यता चलती है। मूल्य जीवन का संरक्षण करता है, यह जीवन के विकास में सहायक होता है तथा इसी के द्वारा मानव आत्म–साक्षात्कार करता है।

मानव–जीवन का एक पहलू है 'नैतिकता।' व्यक्तित्व के निर्माण में नैतिक मूल्यों का महत्व अक्षुण्ण है। जिस नैतिकता की बात आज हम करते हैं। उसका रूप संस्कृत–साहित्य में मिल जाता। हमे यह मानना ही होगा कि जब–जब नैतिक मूल्यों विघटन और हनन होता है, तब–तब मानव ओर समाज का विनाश ही होता है। वैसे तो 'मूल्य' अर्थशास्त्र का शब्द है, किन्तु इस का प्रयोग साहित्य के संदर्भ में आज नहीं, अति प्राचीनकाल से होता आया है। यदि 'मूल्य' शब्द का सीमित न करें तो यही कह सकते हैं कि मानव को आनंदित करन एवं उसके जीवन को सार्थक बनाने वाली हर वस्तु मूल्य है, जो अमूल्य होती है। मानव का यह गुण होता है कि वह अनुपयोगी वस्तु को भी अपने लिए उपयोगी बनाकर मूल्यवान बना देता है। मेरी दृष्टि में मूल्य वस्तु की ऐसी कसौटी है, जो उसे महत्ता प्रदान करता है। समसामयिक संदर्भों में मूल्य का अर्थ और भी व्यापक हो गया है। मानवीय मूल्यों में निरंतर गिरावट आने के कारण नैतिकता है। मानव–जीवन तो जल की धारा है, जिसमें आज रूकावट उत्पन्न हो गई है। जिस प्रकार रूका हुआ जल सड़ाँध देता है, वैसे ही नैतिक मूल्यों की गिरावट मानव–जीवन एवं समाज को सड़ाँध से भर रही है। मानव, मात्र मानव बनकर जिए, उसमें मानवता हो, वह किसी का अहित न सोचे तो वही नीतिवान् और सच्चरित्र माना जाएगा। मानव–मूल्य तथा नैतिक मूल्य अभिन्न है। युग बदलने के साथ नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आता है। यह सौ फीसदी स है

कि नैतिक हीन व्यक्ति हर क्षेत्र में अव्यवस्था फैलाता है। एक ओर मूल्य विघटित होता है तो दूसरी ओर उसके प्रति सचेत करने वाले लोग भी होते हैं। मानव का हृदय सागर–स्वरूप है, जिसमें भावना–रूपी उत्ताल तरंगें उठती है। ये तरंगें आह्लादकारी होती हैं तो विनाशकारी भी। इसी विनाशकारी रूप से प्रारम्भ होता है नैतिक मूल्यों का हनन एवं विघटन। हम ऐसा तो नहीं कह सकते कि पहले मानव में कमियां नहीं होती थीं, किन्तु आज मानव अपने स्वार्थ के लिए कोई नीति मानने को तैयार नहीं। यही नहीं, जो नैतिकता की बातें करते हैं, उन्हें भी दिग्भ्रमित और मूर्ख समझने की स्थिति उत्पन्न हो रही है। कवि कहता है कि आज के युग में मनुष्य किसी यंत्र का पुर्जा बन गया है। आज समाज में उन व्यक्तियों को सम्मान मिलता है, जो बक के समान होते हैं–

आज रता सड़ रही है, और पशुता बढ़ रही है,

ज्ञान की छाती दबोचे, आज प्रभुता अड़ रही है,

यंत्र का पुर्जा बना बस आज मानव चल रहा है।

अरे इसका करूण रोदन भी किसी को खल रहा है

योग्यता पांडित्य की ठठरी सुलगती जा रही है,

हंस को दुत्कार मिलती और बक की दाल गलती जा रही है।

नीति तो यह कहती है कि ऊँचे पद को प्राप्त करने वाला वैसे ही विनम्र हो जाता है, जैसे वृक्ष पर फल आने से वह नम्रीभूत हो जाता है। आज स्थिति इसके विपरीत है। जिस प्रकार पैरों में गड़कर काँटा अति दुःख देता है, वैसे ही नैतिक हीन व्यक्ति कितना ही अच्छा बनने का दिखावा करें, किन्तु मौका पड़ने पर वह भारी पीड़ा देता है। कवि समसामयिक विषम परिस्थतियों को व्यक्त करते हुए कहती है कि आज बहुत अच्छा होना भी व्यक्ति के लिए बुरा है। हम जिसे अपना मित्र समझते हैं, वही मौका पड़ने पर डँस लेता है–

आज लगता है, जैसे कि,

सदियों से हमने

दूध पिलाया किसी साँप की।

उसकी बढ़ती हुई फुफकार को

हमने एक भोली–सी मचलन ही समझा

उसके फैलते हुए फन को

और विष भरे जबड़ों को हमने

कभी शक की नजर से न देखा

बुद्धिजीवी और विज्ञान ने मानव–मन में महत्वाकांक्षा की ऐसी भूख जाग्रत कर दी है कि वह दुर्दात बनता जा रहा है। समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र में यदि हम दृष्टि डालें तो पाते हैं कि जीवन–मूल्यों में गिरावट आ रही है। स्वार्थ ही इस गिरावट का केन्द्र–बिन्दु है। मनुष्य नाम और पैसे के पीछे इतना दीवाना हो रहा है कि 'बदनामी' और 'डर' जैसे शब्दों को उसने मन से निकाल फेंका। धरती जब अपने अक्ष पर घूमता है तो कहीं उजाला होता है तो कही अँधेरा, वैसे ही मानव जीव का चक्र घूमता है तो कहीं सुख रूपी प्रकाश होता है तो कही दुःख रूपी अँधेरा। इस दुःख रूपी अँधरे के प्रतिकार–स्वरूप मूल्यों में बदलाव आता है। सुख और मूल्य का गहरा सम्बन्ध होता है। आचार्य तुलसी ने अपने निबन्ध 'सुखवाद और नैतिकता' में एक बड़ी ही अच्छी बात कह है कि जो कर्म या विचार व्यक्ति को सुख न दे सके, जिसके द्वारा मनुष्य को कष्ट या दुःख की अनुभूति हो वह नैतिक कैसे हो सकता है? मेरा यह मानना है कि सुख एवं दुःख को हम किसी भी परिभाषा में की

बॉध सकते। एक व्यक्ति का सुख दूसरे व्यक्ति के दु:ख का कारण हो सकता है, अतः इसमें कोई शंका नहीं है कि नैतिकता और मूल्य का सम्बन्ध मानव के आत्म–संतोष और नियम से होता है। आज सम्पूर्ण विश्व में धर्म, संस्कृति, न्याय इत्यादि की परिभाषाएँ बदल गई हैं, जिनसे मनुष्य अत्यधिक प्रभावित हुआ है–

यह भगवल्लीला का युग है होड़ लग रही सेवाओं की

परिचर्या पदचुंबन की, साष्टाटांग समर्पण की

जिसके जितना यह आता है, वह उतना ही फल पाता है

हे धन्य 'प्रभु' का न्याय विश्व का यही धर्मकाँटा है।

मानव को कर्तव्यनिष्ठ, आत्म–अनुशासित, मानवीय गुणों (सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, ममता, धैर्य, क्षमा इत्यादि) निरपेक्ष असांप्रदायिक, आत्मसंतोषी और सहनशील, संयमी एवं संतुलित, समन्वयकारी जैसे अनेकानेक गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए। यदि इनमें किसी की भी कमी होती है, तभी से मानवीय मूल्य के विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जती है। आज की युवा–पीढ़ी दिग्भ्रमित स्थिति में जी रही है, क्योंकि दोहरे जीवन–मूल्य उन्हें सही दिश–निर्देश नहीं दे रहे हैं। एक तरफ उनके सामने प्राचीन भाव सांस्कृतिक परंपराएँ हैं, तो दूसरी ओर विज्ञान से जनमी भोगवादी दृष्टि। इस युवा–पीढ़ी की स्थिति उस छोटे मेमने–जैसी है, जिसके एक तरफ शेर खड़ा है तो दूसरी ओर गहरी खाई है, वह जाए तो किधर? इसी कश्मकश में पड़ी यह पीढ़ी मूल्यहीनता–रूपी गहरे अंधकारपूरित कुएँ में उतरती जा रही है। अनुशासनहीनता, चरित्रहीनता, साम्प्रदायिक उन्माद, असंतुलन, क्रूरता एवं क्रोध–जैसी विसंगतियों मानव–जीवन में व्याप्त होती जा रही है, जिनके कारण मूल्यों में गिरावट आती जा रही है। मैं तो यह मानती हूँ कि नैतिकता परकटे पक्षी सी हो गई है, जो तड़प रही हैं, किनतु उसका उद्धार करने वाला उसे बचानेवाला कोई नहीं। स्थिति यहॉ तक पहुँच जाती है कि व्यक्ति अंदर ही अंदर टूटता ओर मरता चला जाता है। व्यक्ति भले ही आशा और उत्साह से भरे हुए व्याख्यान लोगों को सुनाता रहे, किन्तु वास्तविकता यही है कि वह अँगारों पर चलता रहता है–

अँगारों से जलता जाता हूँ, फिर भी हँस–हँस चलता जाता हूँ

मैं अंदर से मरता जाता हूँ, डग यद्यपि भरता जाता हूँ,

संसार समझता है–उन्नति के पथ पर हूँ।

जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि प्रत्येक क्षेत्र में मूल्य नष्ट हो रहे हैं। मानव के संस्कार, नैतिक मूल्य एवं धर्म इत्यादि का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है। जैसे आचार–विचार, सुसंस्कृतनिष्ठता, इच्छाशिक्त, आत्मशक्ति संस्कार के फलस्वरूप आते हैं, वैसे ही मूल्य भी धर्म और संस्कार के गुण हैं। संस्कारों के गहरे हाने के साथ–साथ जीवन मूल्यों में बदलाव आता है। अब प्रश्न यह उठता है कि जीवन में आदर्श और यथार्थ का कितना प्रतिशत हो, क्योंकि ये दोनों शब्द समय के साथ परिवर्तित होते हैं। भावनात्मक एकता के लिए यह आवश्यक है कि मानव, के मन को और उसकी गहराई को समझे, जाने तथा महसूस करे, किन्तु आज इसका उल्टा हो रहा है। मानव एकता के नाम पर कभी भावना और भाषा की एकता के नाम पर तो कभी सांस्कृतिक एकता के नाम पर लोगों का शोषण किया जाता है। डॉक्टर जैन जी अपनी एक कविता में इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

जड़ रही है, उसे कौन देखता है?

मानवैक्य के नाम पर, भावना–ऐक्य के नाम पर,

भाषा–ऐक्य, सांस्कृतिक आदान–प्रदान,

शिक्षा माध्यमैक्य, सिद्धांतैक्य''

मूल्य सिद्धांत हैं अैर जब यह व्यावहारिक धरातल पर व्यवहृत होते हैं, तभी समष्टि के लिए उपयोगी होते हैं। मात्र मानव ही नहीं, समाज, राजनीति तथा धर्म सभी के लिए मूल्य आवश्यक एवं उपयोगी हैं। मानव का अकेला नहीं, सामाजिक अनुशासन में रहना उसका कर्तव्य होता है, किन्तु जब समाज के नैतिक मूल्य विघटित होने लगते हैं, तब मानव का कर्तव्य के मार्ग से विमुख हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। जिस प्रकार बुलंद इमारत के लिए मजबूत नींव, शक्तिशाली वृक्ष के लिए स्वस्थ जड़ों का होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मानव, समाज, धर्म एवं राजनीति को अच्छा बनाने के लिए श्रेष्ठ जीवन–मूल्यों की आवश्यकता होती है। 'तप्त लहर' की कई कतिवाओं में सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्य विघटन व्यक्त हुआ है। भारतीय संस्कृति में दूसरों के सुख से सुखी और दूसरों के दुःख से होने की परम्परा है, किन्तु अब ऐसा नहीं है, क्योंकि अब तो किसी को हँसता–खिलखिलाता देखकर जगत् को ओछा, उथला और संकुचित दिल ईर्ष्या से धधकने लगता है–

तो बस, बसने से पहले ही, इस नूतन पंछी जोड़े का

संसार उजड़ने लगता है–यह कैसी अनहोनी है।

किसी को हँसता खिलता देख जगत् का ओछा,

उथला दिल

धधक धू–धू–सा जलता है, कहने में डर–सा लगता है।

प्रकृति गर्भा है। यह अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीती है। मनुष्य के मानव होने की परिभाषा भी यही है कि वह दूसरों के लिए जिए। भारतीय संस्कृति और वैष्णव संस्कारों को महत्व देने वाले समसामयिक कवि नरेश मेहता की रचना 'वृक्ष–बोध में इसी वैष्णवी संस्कृति की समर्पणशील प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है–

आज का दिन एक वृक्ष की भाँति जिया

और प्रथम बार वैष्णवी संपूर्णता लगी।

अपने मे से फल को जन्म देना

कितना उदात्त होता है

यह केवल वृक्ष जानता है

और फल–वह तो जन्म–जन्मांतरों के पुण्यों का फल है

''सच, आज का दिन एक वृक्ष की भाँति जिया

और प्रथम बार वानस्पतिक समर्पणता जगी।

जिस प्रकार नदी अने को सिंधु में समर्पित कर देती है, पवन सृष्टि के प्राणियों के लिए प्रवाहित होता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का संकल्प लेना चाहिए। मेहता जी की उपर्युक्त कतिवा की तरह जैन जी ने भी अपने कविता 'किसके लिए?' में प्रकृति के इसी रूप का चित्रण किया है–

सदा गति पवन, सतत प्रहमान है किसके लिए?

रजताभ जीवन–राशि लिए, सरिताओं का

अनथक–

अभियान किसके लिए?

वृक्षों का लदबदा कर, हर साल फलना,

सूरज का प्रतिपल जलना, लताओं का

झूमना–मचलना,

तारों की बारात लिए चंदा का चमकना किसे लिए?

खुद के लिए? नहीं, सिर्फ जमाने के लिए।

कुछ इसी प्रकार का भाव कवि की अन्य कविताओं, जैसे–मैं एक तरू हूँ, 'चार मुक्तक' में व्यक्त हुआ है। कवि की यह कामना है कि वह ऐसे प्रकाश के स्रोत बने, जिसे सैकड़ों लोग अपना सही मार्ग खोज सकें तथा हॅसते और मुस्कराते रहें। मैं एक लैंप पोस्ट हूँ, कविता कवि की इसी भावना को व्यक्त करती है। 'मुझे जीने दो' कविता में कवि ने वर्तमान और भविष्य का बड़ा ही यथार्थ चित्र खींचा है–

अय, अतीत की गौरवगाथाओं दुःख की, लाचारी की

करूण कथाओं, आदर्शों की संस्कारों की

भक्षणशीला प्रेतमयी छायाओं!

छोड़ो मेरा पीछा, मत खींचो मेरा जीवन–रेखा।

कविता का अतीक उनके लिए, जो लक्ष्मण–रेखा खींचता है, उसमें बँधकर उनका निजत्व सदा के लिए मिट जाता है, फिर भी वे कृत–संकल्प होते हैं कि वे उस अतीक को सदा के लिए दफना देंगे। भविष्य के मिथ्या अपने देखते और कल्पनालोक में विचरण करते कवि को भविष्य एक नागिन की भाँति दिखाई देता है, जो उसे पीछे से नहीं, आगे से डसता है और उसके सुखों का भस्मीभूत कर देता है। इसी भविष्य के नीचे कवि का सुंदर–सा वर्तमान है, जो लुट–पिट रहा है और कवि इस काले इतिहास को सदा के लिए ध्वस्त होते देखना चाहता है–

और यह काला इतिहास, यह मरीचिका

सदा के लिए ध्वस्त हो जाए।

सभी धर्मों में सर्वश्रेष्ठ मानव–धर्म है। पूँजीवादी व्यवस्था ने इस धर्म का मटियमेट कर दिया है। 'कर्मण्येवाध्किारस्ते' कविता में कवि ने भूखे–निर्वस्त्र दलित वर्ग का चित्रात्मक शैली में वर्णन किया है। इन श्रमिकों के बच्चे मात्र कंकाल दिखाई देते हैं, पत्नी चलती–फिरती ठठरी लगती है, प्रस्तुत कविता में व्यंग्यात्मकता का सहारा लेते हुए कवि कहता है कि श्रमिकों को मात्र कर्म करना चाहिए, अंतिम श्वास तक प्राणी की आहुति देनी चाहिए, किन्तु कभी भी फल की आशा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि फल पर तो उसी का अधिकार है, जिसने धर्मशालाएँ बनवाई, पाठशालाएँ खुलवाईं, जिसके नाम से चिकित्सालय चलते हैं और जिसके दिए हुए तेल से हर अँधेरे घर में चिराग जलते हैं। ये पूँजीवादी अपने को भगवान् का प्रतिनिधि कहते हैं और फल तथा दूध पर गुजारा करते हैं, कारों में हवा के साथ बहते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि उनके ऐसा करने से वह गरीबों के बारे में अधिक सोच सकेंगे। इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ पूरी कविता का व्यंग्य–भाव प्रकट कर देती हैं–

मुझपर जो कुछ भी है, सब देश का, भगवान का

मेरा क्या? मैं तो मुट्ठी बाँधे आया था

हाथ पसारे जाऊँगा।

सामाजिक जीवन–मूल्य व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों पर निर्भर करता है। मानव–जीवन का प्रधान लक्ष्य वैयक्तिक मूल्य है। यह वैयक्तिक मूल्य सामाजिक मूल्य में परिवर्तित होते हैं। यदि समाज न हो तो मूल्यो का कुछ भी महत्व नहीं होगा। सामाजिक मूल्यों का उद्देश्य समाज को एक इकाई के रूप में मानकर उसका हित करना होता है। पूँजीवादी व्यवस्था के कारण समाज में विषमता पैदा हो गई है। एक ओर गगन का चुंबन लेती विशालकाय इमारतें हैं तो दूसरी ओर जीर्ण–शीर्ण झोपड़ियाँ। गरीबों के खून पसीने पर पूँजीवादी ऐश करता है–'मैं खून पसीना एक

करूँ, तू ऐश करे।' इसी सामाजिक विषमता का कारण गरीब बालकों को रोटी और कपड़स नहीं मिलता है। हमारे यहॉ एक और दारूण स्थिति है, भारतीय समाज में विधवा की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। 'हतभाग्या' कविता में जैन जी ने विधवा की दयनीय अवस्था का यथार्थ चित्रण किया है–

तेरे दुःखों का नहीं अंत, री विधवा, तू है क्षीण म्लान;

रह गया शेष तेरा जीवन, करने को शत–शत अश्रुदान।

आर्थिक विषमता ही समाज में मानव मानव के बीच गहरी रेखा खींचती है। विश्व की सम्पत्ति समू मानव के लिए प्रकृति की देन है। अर्थ का अनुचित उपयोग समाज में कलह उत्पन्न करता है। एक ओर गरीब भूखे और निर्वस्त्र रहते हैं, उनके बच्चे कंकाल की तरह दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर पूँजीपति बड़ी–बड़ी इमारते बनवाते हैं, महलों में रहते हैं और कारों में घूमते हैं–

क्या करें? देश में अन्य की कमी है।

हम जो बड़े–बड़े ऊँचे–ऊँचे महलों में रहते हैं

कारों में हवा के साथ बहते हैं, केवल इसलिए कि–तुम सबके लिए

अधिकाधिक सोच सकें, समय की बचत हो।

कुछ इसी प्रकार का भाव कवि की अन्य कुछ कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। राजनीतिक मूल्य–विघटन को लेकर कवि का मन अत्यन्त चिंतित है। आज की राजनीति में भ्रष्टाचार का प्रवेश हो गया है। कवि इनका अनुभव करता है और कहता है कि आज राष्ट्रीय चरित्र का अभाव हो गया है और यही कारण है कि देश में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। दूषित राजनीति के कारण देश में भावनात्मक एकता के स्थान पर विषमता उत्पन्न हो गई है–

गरज यह, कि जब तक

इन हीनता–ग्रंथियों के जनक, मूल कारण

इस देश में हैं, असंभव ही रहेगा

भावनात्मक ऐक्य।

'तप्त लहर' की कई कविताओं, जैसे–'गले की हड्डी', 'चट्टान', मैं एक किनारा हूँ सदा की तरह आज भी' 'मुझे जीन दो' 'चरण कब के थक चुके' इत्यादि कवि ने मानव–मन की पीड़ा अभिव्यक्त की है। इस काव्य–संग्रह में सामाजिक चेतना के विविध रंग बिखरे पड़े हैं। कवि की सभी कविताएँ उनके संवेदनशील मन की अभिव्यक्ति हैं। भारतीय समाज के जीर्ण होते सांस्कृतिक मूल्यों को कवि की कविताएँ एक ऊर्जा प्रदान करेंगी। सत्य को परखने, अपनाने और उसके लिए जूझने तथा सब कुछ सहने की तत्परता देने वाली एक आत्मशक्ति होती है, जो असत्य, कृत्रिम और निर्जीव राख से ढके अंगारे के भीतर छिपी चिनगारी में प्रकाश की तरह व्याप्त रहती है। आवश्यकता है उस चिनगारी को खोजने की और रक्षित करने की। अनुभूति के किसी न किसी गहरे क्षण में ऐसी चिनगारी की उष्णता का अनुभव होता है, परन्तु सामाजिक धरातल पर उसे वस्तुगत यथार्थ के रूप में व्यक्त कर पाना विषम परिस्थितियों के कारण संभव नहीं हो पाता। इसी का दीं एवं असंतोष कवि की कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। उनकी कविताओं में युग–सापेक्षता का स्वर बड़े ही तीखे रूप में व्यक्त हुआ है। कवि की कविताएँ पढ़कर मेरे समक्ष उनका जो व्यक्तित्व बिंबित होता है, यदि उसे मैं अपनी पंक्तियों में ढालना चाहूँ तो –

बुलन्द इमारत हूँ आज भी

लोग कहते हैं ढह गया हूँ

किन्तु

ये उनकी दृष्टि है, मेरी नहीं

मैं तो

आज भी बुलद हूँ

क्योंकि

हौंसले ही नहीं, आशाएँ भी बुलन्द हैं।

मैं

हँसता–खिलखिलाता तरू हूँ

जिसकी जड़े डूबी हैं

संस्कृति की गहराई में।

संदर्भ

- ✓ डॉ0 रविन्द्र कुमार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व– डॉ0 निर्मला कुमारी
- ✓ हिन्दी साहित्य का वस्तु परख इतिहास– डॉ0 राम प्रसाद मिश्र
- ✓ हिन्दी साहित्य के साधना शील– रविन्द्र कुमार जैन डॉ0 सौरभ पाल
- ✓ डॉ रविन्द्र कुमार जैन के साहित्य में लोक सांस्कृति–डॉ0 प्रमोद कुमार।
- ✓ डॉ0 रविन्द्र कुमार जैन के साहित्य में मूल्य – डॉ0 बी0आर0 सरोज।